श्रील रूप गोस्वामीका वैशिष्ट्य

—श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

(श्रील रूपगोस्वामीकी विरह-तिथिके
उपलक्षमें लिखित प्रबन्ध)

GAUDIYA VEDANTA PUBLICATIONS
GVP

श्रील रूप गोस्वामीका वैशिष्ट्य

श्री श्री भागवत पत्रिका
वर्ष ४ संख्या ७–८
सितम्बर–अक्टूबर २०

गौड़ीय वेदान्त प्रकाशन

प्रथम संस्करण— ३००० प्रतियाँ

श्रीश्रीलरूप गोस्वामीकी तिरोभाव तिथि
श्रीचैतन्याब्द ५२४
२१ अगस्त, २०१०

प्राप्तिस्थान

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
मथुरा (उ॰प्र॰)
०५६५–२५०२३३४

श्रीरूप–सनातनगौड़ीय मठ
सेवाकुञ्ज, वृन्दावन (उ॰प्र॰)
०५६५–२४४३२७०

श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठ
दसविसा, राधाकुण्ड रोड
गोवर्धन (उ॰प्र॰)
०५६५–२८१५६६८

श्रीरमणबिहारी गौड़ीय मठ
बी–३, जनकपुरी, नई दिल्ली
०११–२५५३३५६८

श्रीश्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
कोलेरडाङ्गा लेननवद्वीप,
नदीया (प॰बं॰)
०९३३३२२२७७५

खण्डेलवाल एण्ड संस
अठखम्बा बाजार, वृन्दावन
०५६५–२४४३१०१

समर्पण

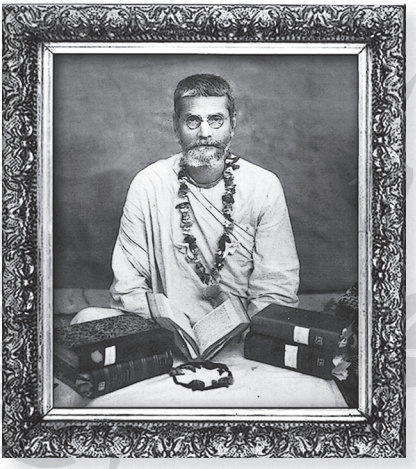

परम करुणामय एवं अहैतुकी कृपालु
अस्मदीय श्रीगुरुपादपद्म

नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद

श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी

प्रेरणासे
यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है।
श्रीगुरुपादपद्मकी अपनी ही वस्तु उन्हींके
श्रीकरकमलोंमें समर्पित है।

©Subala-sakha dasa

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

श्रील रूप गोस्वामीका वैशिष्ट्य

श्रीचैतन्यमनोऽभीष्टं स्थापितं येन भूतले।
स्वयं रूपः कदा मह्यं ददाति स्वपदान्तिकम्॥

(प्रेमभक्तिचन्द्रिका मङ्गलाचरण २)

जिन्होंने धरातल पर श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके मनोऽभीष्टकी स्थापना की है, वे श्रील रूपगोस्वामी कब मुझे अपने चरणकमलोंमें स्थान प्रदान करेंगे?

श्रीचैतन्यमहाप्रभुजीका मनोऽभीष्ट क्या है?

अनर्पितचरीं चिरात् करूणयावतीर्णः कलौ।
समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वल रसां स्वभक्तिश्रियम्॥

(श्रीविदग्धमाधव १/२)

अर्थात् सुवर्ण कान्तिसमूह द्वारा देदीप्यमान श्रीशचीनन्दन गौरहरि तुम्हारे हृदयमें स्फुरित हों। जिस सर्वोत्कृष्ट उज्ज्वल रसका दान उन्होंने जगतको चिरकाल तक नहीं दिया, उसी स्वभक्ति रूपी सम्पत्तिका दान करनेके लिए वे करूणापूर्वक कलिकालमें अवतीर्ण हुए हैं।

स्वयं–अवतारी श्रीकृष्ण षडैश्वर्यशाली होनेपर भी रसिकशेखर भी हैं। उन्होंने स्वयं मधुर आदि बारह रसोंका आस्वादन

तो किया, परन्तु जगज्जीवोंको वह प्रेम नहीं दिया। इसलिए श्रीराधाभाव और कान्ति-सुवलित श्रीकृष्ण-स्वरूप श्रीशचीनन्दन गौरहरि उस उन्नतोज्ज्वल रसकी श्री, अर्थात् शोभाको जगज्जीवोंको प्रदान करनेके लिए कृपापूर्वक कलियुगकी प्रथम सन्ध्यामें अवतीर्ण हुए। उन्नतोज्ज्वल रस—परकीया भाव है। यह परकीया भाव श्रीराधिकाजीका और उनकी कायव्यूहस्वरूपा गोपियोंमें ही है। उनका वह मादनाख्य भाव या रूढ़ आदि भाव किसी भी जीवको नहीं दिया जा सकता; किन्तु हाँ, उनके उस भावकी श्री-अर्थात् शोभा दी जा सकती है। ह्लादिनीशक्ति स्वरूपा श्रीराधिका प्रेमकल्पलता हैं—गापियाँ उनके पत्ते और पुष्प आदि हैं तथा उन सबकी शोभा उनकी मञ्जरियाँ हैं। जिस प्रकार पवनके झोंकोंसे ये मञ्जरियाँ लताकी शोभाको और भी अधिक वर्द्धित कर देती हैं, उसी प्रकार श्रीराधिकाजीकी अन्तरङ्ग सेविकाएँ—श्रीरूपमञ्जरी आदि श्रीराधिकाजीकी शोभा हैं। उन्हीं मञ्जरियोंके भावको श्रीनाम-संकीर्तनके माध्यमसे जगज्जीवोंको प्रदान करनेके लिए ही श्रीकृष्णने श्रीचैतन्य रूपमें अवतार ग्रहण किया।

श्रीचैतन्य महाप्रभुका मनोऽभीष्ट परकीया भावका प्रचार करना था। श्रीरूप गोस्वामीने उनके उस मनोऽभीष्टको उन्हींकी प्रेरणा और कृपासे स्थापित किया है। श्रीचैतन्य महाप्रभुसे पूर्व श्रीकृष्ण और गोपियोंके इस उन्नतोज्ज्वल परकीया भावको लोग घृणाकी दृष्टिसे देखते थे। परन्तु श्रील रूपगोस्वामीने प्रबल शास्त्रीय युक्तियोंसे श्रीकृष्णरूप नायक और गोपीरूप नायिकाओंके बीच परकीया भावको परम पवित्र, शुद्ध और सर्वोन्नत रसके रूपमें स्थापित किया है। उन्होंने उज्ज्वलनीलमणि-ग्रन्थमें कहा है—

लघुत्वमत्र यत्प्रोक्तं तत्तु प्राकृतनायके।
न कृष्णे रसनिर्यासस्वादार्थमवतारिणि॥

(नायकभेद प्रकरणम् २१)

उपपति भावकी जो लघुता बतलायी गयी है, वह केवल प्राकृत नायकके सम्बन्धमें ही प्रयोज्य है—स्वयं श्रीकृष्णके सम्बन्धमें नहीं। श्रीकृष्ण धर्म-अधर्मके नियन्ता अवतारोंके भी चूड़ामणि सर्व-अवतारी हैं। जब अवतारोंके ऊपर ही धर्म-अधर्मका नियामकत्व नहीं रहता, तब अवतारी श्रीकृष्ण प्रति उसकी संभावना कैसे हो सकती है? श्रीकृष्ण द्वारा उपपति भाव ग्रहण करनेका कारण है-रसनिर्यास आस्वादनकी अभिलाषा। श्रीकृष्ण सर्वकारणकारण, सबके आदि, स्वयं अनादि, सर्वशक्तिमान् और अखिलरसामृत-सिन्धु हैं तथा गोपियाँ—'**आनन्दचिन्मयरसप्रतिभाविताभिः ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभिः।**' **(श्रीब्रह्मसंहिता ५/३७)**

आनन्दचिन्मयरस अर्थात् परमप्रेममय उन्नतोज्ज्वल नामक रसमें सराबोर स्वरूपवाली एवं निज-स्वरूप अर्थात् श्रीकृष्ण-स्वरूप होनेके कारण ह्लादिनी-शक्तिकी वृत्तिरूपा हैं। फिर ऐसे श्रीकृष्ण जहाँ नायक हैं और ऐसी गोपियाँ जहाँ नायियाएँ हैं, तब उस परकीया भावमें दोष कहाँ है?

श्रीचैतन्यचरितामृतमें भी कहा गया है—

प्रेम-रस-निर्यास करिते आस्वादन।
रागमार्ग भक्ति लोके करिते प्रचारण॥
रसिक शेखर कृष्ण परम करूण।
एइ दुइ हेतु हैते इच्छार उद्गम॥

(श्रीचैतन्यचरितामृत आदि ४/१५-१६)

अर्थात् प्रेमरसके सारका आस्वादन करनेके लिए तथा रागमार्गीय भक्तिका प्रचार करनेके लिए परम रसिक और परम करूण श्रीकृष्णने जगतमें अवतीर्ण होनेकी इच्छा की।

श्रील रूपगोस्वामीने श्रीमद्भागवत आदि शास्त्रोंसे प्रमाण देकर गोपियोंके परकीया भावका उल्लेख किया है—

(१) **'ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिः भ्रातृबन्धुभिः'**

(श्रीमद्भा.१०/२९/८)

अर्थात् गोपियोंके पति, पिता, भाई और बन्धुओंके द्वारा उन्हें रोकने पर भी वे नहीं रुकीं।

(२) **'भ्रातरः पतयश्च वः विचिन्वन्ति'**

(श्रीमद्भा.१०/२९/२०)

अर्थात् तुम्हें न देखकर तुम्हारे माता–पिता, पति–पुत्र और भाई–बन्धु तुम्हें ढूँढ़ रहें होंगे।

(३) **'पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवानतिविलंघ्य ते'**

(श्रीमद्भा.१०/३१/१६)

अर्थात् हे अच्युत! हम अपने पति–पुत्र, भाई–बन्धु, कु मर्यादाका उल्लंघन कर तुम्हारे पास आयी हैं।

(४) **'एवं मदर्थोज्झितलोकवेद स्वानां हि'**

(श्रीमद्भा.१०/३२/२१)

अर्थात् हे अबलाओं! तुमने मेरे लिए लौकिक और वैदिक धर्मका तथा सगे–सम्बन्धियोंको भी त्याग दिया है।

(५) **'न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः'**

(श्रीमद्भा.१०/३२/२२)

अर्थात् हे गोपियो! तुमने दुर्जय घर-गृहस्थीकी बेड़ियोंको तोड़कर मेरा भजन किया है।

(६) **'नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः'**

(श्रीमद्भा.१०/४७/६०)

अर्थात् रासलीलामें भगवान् श्रीकृष्णने अपनी भुजाओंको गोपियोंके गलेमें डालकर उनके अभीष्टको पूर्णकर उनपर जैसी कृपा की, वैसी कृपा उनके वक्षःस्थल पर नित्य विराजित लक्ष्मीदेवीको भी प्राप्त नहीं हुई।

(७) **'आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्'** (श्रीमद्भा.१०/४७/६१(क))

(८) **'या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्'** (श्रीमद्भा.१०/४७/६१(ख))

अर्थात् श्रीउद्धवजी कहते हैं—जिन्होंने दुस्त्यज्य पति-पुत्र-आत्मीय सम्बन्धी और लौकिक-वैदिक मर्यादाका परित्यागकर श्रुतियों द्वारा भी ढूँढ़ी जा रही श्रीकृष्ण पदवी (श्रीकृष्ण प्रेम) को प्राप्त किया है। अहो! मैं इस वृन्दावनमें उन गोपियोंकी चरणधूलीको निरन्तर सेवन करनेके लिए कोई झाड़ी, लता या औषधिके रूपमें जन्म ग्रहण करुँ। अर्थात् इन व्रजाङ्गनाओंका रुक्मिणी आदिसे भी अधिक प्रेम-उत्कर्ष है।

(९) गोपालमंत्र आदिमें—'**गोपीजनवल्लभाय स्वाहा**' (श्रीगोपालतापनी पूर्व ३)—में 'गोपीजनवल्लभ' शब्द परकीया भावका ही द्योतक है।

श्रील रूप गोस्वामीने श्रीउज्ज्वलनीलमणि ग्रन्थके अतिरिक्त अपने विदग्ध-माधव और ललित-माधव नामक नाटक ग्रन्थोंमें, हंसदूत, दानकेलिकौमुदि आदि ग्रन्थोंमें भी गोपियोंके परकीया भावका उल्लेख किया है।

किसी-किसी सम्प्रदायमें श्रीश्रीराधा-कृष्णके नित्य मिलन और विहारको ही स्वीकार किया जाता है; परन्तु वे प्रछन्न-कामुकता, विरह-विच्छेद, मान, अभिसार, दुर्लभता और निवारण आदि नहीं मानते, गोपियोंके परकीया-भावके प्रति साधारण नायक-नायिकाओंकी भाँति सामान्य-बुद्धि रखते हैं, परकीया भावको दुराचारके रूपमें दर्शन करते हैं—ऐसे व्यक्ति श्रीरूप गोस्वामीके विचारसे दुराशय हैं! उन्होंने उल्लेख किया है—

आः किं वान्यद्यतस्तस्यामिदमेव महामुनिः।
जगौ पारमहंस्याञ्च संहितायां स्वयं शुकः॥

(श्रीउज्ज्वलनीलमणि ३/२२)

श्रील रूप गोस्वामी इस श्लोकमें 'आः' पदका प्रयोगकर अत्यन्त खेदके साथ कह रहे हैं कि पारमहंसी संहितामें महामुनि श्रीशुकदेवजीने व्रज-गोपियोंकी परकीय महिमाका उच्च स्वरसे गान किया है। यह पारमहंसी संहिता सर्वप्रथम भगवान् नारायणके द्वारा चतुःश्लोकीके रूपमें लोक पितामह ब्रह्माजीके निकट प्रकाशित हुई तथा नारायण-स्वरूप परमहंस श्रीव्यासदेव द्वारा लिखी गयी है। परमहंसकु

यह संहिता मृत्युके लिए प्रस्तुत महाराज परीक्षित्की सभामें

देवर्षि नारदजी, श्रीवशिष्ठजी, श्रीपराशरजी, श्रीवेदव्यासजी जैसे गुरुवर्ग–महातत्त्व–ज्ञानी, रसिक, मुक्तकु
उपस्थितिमें उच्च स्वरसे गान की गयी तथा उसी समय इस पारमहंसी संहिता श्रीमद्भागवतके व्याख्यानमें इस परकीया भावका पाठ किया गया। इसके वक्ता और श्रोता श्रीशुकदेवजी और महाराज परिक्षित्, श्रीसूतजी और शौनकादि मुनि, विदुर और मैत्रेय मुनि–सभी मुक्तपुरुष या महापुरुष हैं। अतः यह परकीया भाव कदापि निन्दनीय या घृणित नहीं हो सकता।

श्रीमन् महाप्रभुसे पूर्व वैष्णव–सम्प्रदायोंमें–वैधी भक्ति तो थी, परन्तु भक्तिरस नहीं था। श्रील रूपगोस्वामीने ही उस भक्तिको भक्तिरसके रूपमें स्थापित किया। उन्होंने रति या स्थायीभावके साथ आलम्बन और उद्दीपन रूप विभाव, सात्त्विक भाव, अनुभाव और संचारी आदि भावोंके मिलनसे किस प्रकार शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर (शृंगार) ये पाँच मुख्य रस तथा हास्य, अद्भुत, करूण, वीर, रौद्र, भयानक, वीभत्स ये सात गौण भक्तिरस होते हैं–इनका उदाहरणके साथ वर्णन किया है, जो अन्यत्र कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता है।

श्रील रूप गोस्वामी कृष्ण–लीलामें श्रीरूपमञ्जरी है। उस लीलामें वे नित्य किङ्करीरूपमें युगलकी निभृत कु
तो करते हैं; परन्तु उस किङ्करी भावको कैसे प्राप्त किया जा सकता हैं, उसकी प्रक्रिया वे किसीको नहीं बताते हैं। परन्तु श्रीरूप गोस्वामीके रूपमें उन्होंने बतलाया है—

कृष्णं स्मरन् जनं चास्य प्रेष्ठं निजसमीहितम्।
तत्तत्कथारतश्चासौ कु

(श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु १/२/२९४)

अर्थात् श्रीकृष्णका स्मरण और उनकी सेवा करनेवाले साधक या साधिकाको–सख्य, वात्सल्य या शृंगार भावयुक्त रागात्मिक जनोंमेंसे जिस किसीकी सेवाके प्रति लोभ हो, उनका ही स्मरण करते हुए सदैव व्रजमें वासकर अपनी सिद्धदेहसे उस रागात्मिक जनके आनुगत्यमें युगलकी सेवा करनी होगी तथा सदा–सर्वदा युगलकी कथा–रसमें निमग्न होना होगा, इसीसे उस अभीष्ट भावको प्राप्त किया जा सकता है। विशेषकर गोपियोंके आनुगत्यके बिना उस पारकीय भावकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

श्रीरूप मञ्जरीसे भी श्रीरूप गोस्वामीका वैशिष्ट्य अधिक है। श्रीरूप गोस्वामीके जीवन और लेखनीसे जगतका अधिक उपकार हुआ है।

यङ् कलि रूप शरीर न धरत।
तङ् व्रज प्रेम महानिधि कु
कोन कपाट उघाड़त॥
को जानत मधुर वृन्दावन
को जानत व्रजनीत।
को जानत राधामाधव–रति
को जानत सोई प्रीत॥

तात्पर्य यह है कि यदि श्रीरूप गोस्वामी न होते, तो व्रज–प्रीति रूप महानिधिकी रीति–परकीया भावको कौन प्रकाशित करता? उनकी कृपाके बिना कौन मथुरा–वृन्दावनके माधुर्यको तथा व्रजदेवियोंकी महिमाको जान पाता? तथा कौन राधा–माधवके भाव और उनकी प्रीतिको जान पाता?

श्रीगौरहरि रथयात्राके समय साहित्य दर्पणका एक श्लोक उच्चारण कर रहे थे, उसका तात्पर्य एकमात्र स्वरूप दामोदर ही जानते थे–दूसरा नहीं। परन्तु श्रीरूप गोस्वामीने श्रीमन्महाप्रभुके मनोऽभीष्टको जानकर उस श्लोकका रहस्यपूर्ण तात्पर्य स्वरचित श्लोकमें किया। इसपर श्रीमन्महाप्रभुने उनकी पीठ थपथपायी। साहित्य दर्पणका श्लोक इस प्रकार है—

यः कौमारहरः स एव हि वरस्ता एव चैत्रक्षपा–
स्ते चोन्मीलितमालतीसुरभयः प्रौढ़ाः कदम्बानिलाः।
सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरतव्यापारलीलाविधौ
रेवारोधसि वेतसीतरुतले चेतः समुत्कण्ठते॥

(श्रीपद्यावली ३८६)

जिन्होंने कौमार–कालमें रेवा नदीके तीरपर मेरा चित्त चुरा लिया था, अब वे ही मेरे पति हुए हैं; वही मधुमास–चैत्र महीनेकी रात भी उपस्थित है, खिले हुए मालती–पुष्पोंकी सुगन्ध भी है; कदम्ब–काननके सौरभसे सुवासित मधुर वायु भी मृदु–मन्दगतिसे प्रवाहित हो रही है और सुरतव्यापार–लीलाके कार्यमें मैं वही नायिका भी उपस्थित हूँ; तथापि इस अवस्थामें भी मेरा मन सन्तुष्ट नहीं है, वह तो रेवा–नदीके तटस्थित वेंतके वनमें कदम्ब वृक्षकी छायाके लिए उत्कण्ठित हो रहा है।

श्रीरूप गोस्वामीका श्लोक इस प्रकार है—

प्रियः सोऽयं कृष्णः सहचरि! कु
स्तथाहं सा राधा तदिदमुभयोः सङ्गमसुखम्।
तथाप्यन्तःखेलन्मधुरमुरलीपञ्चमजुषे
मनो मे कालिन्दीपुलिनविपिनाय स्पृहयति॥

(श्रीपद्यावली ३८७)

हे सखि! मेरे प्राण-प्रियतम वही श्रीकृष्ण आज कु
मिले हैं, मैं भी वही राधा हूँ और हम दोनोंका मिलन सुख भी वही है; तथापि वन (वृन्दावन) में क्रीड़ा कर रहे इन्हीं श्रीकृष्णके मुरलीके पञ्चम स्वरकी तानसे आनन्द-प्लावित कालिन्दीके पुलिनपर स्थित वन (वृन्दावन) के लिए मेरा मन अभिलाषा कर रहा है।

श्रीरूप गोस्वामीके द्वारा रचित गोविन्द बिरुदावलीके पदोंका अर्थ बड़ा ही गूढ़ है। बड़े-बड़े दिग्गज पण्डित भी उनका अर्थ समझ नहीं पाते। उनमें अलङ्कार अनुप्रास आदि-विविध प्रकारकी अद्भुत वैचित्री दृष्टिगोचर होती है।

श्रीरूप गोस्वामीने भक्तिरसामृतसिन्धु और उज्ज्वलनीलमणि ग्रन्थोंमें उत्तमा भक्ति एवं उसके प्रथम सोपान श्रद्धासे लेकर, निष्ठा, रुचि, आसक्ति, रति, प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव, महाभाव और मादन आदिकी जो परिभाषा दी है, वह और कहीं भी उपलब्ध नहीं है। दूसरे-दूसरे सम्प्रदायोंके विद्वान भी उन-उन परिभाषाओंका अपने भाषणों या प्रबन्धोंमें उल्लेख करते हैं। जैसे उत्तमा-भक्तिकी परिभाषा—

अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥

(भ.र.सि.१/१/११)

श्रीकृष्ण तथा उनसे सम्बन्धित वस्तु और व्यक्तिके प्रति अनुकूल भाव सहित अनुशीलन यदि निर्भेद ब्रह्मज्ञानकी आसक्ति, सकाम और निष्काम कर्म आसक्ति, वर्णाश्रम और योग आसक्तिके मिश्रणसे रहित एवं श्रीकृष्ण और कृष्णभक्तिके

अतिरिक्त अन्य कामनाओंसे शून्य हो तब उस अनुशीलनको उत्तमा भक्ति कहा जाता है।

साधनकी परिभाषा—

कृति साध्या भवेत् साध्यभावा सा साधनाभिधा।
नित्यसिद्धस्य भावस्य प्राकट्यं हृदि साध्यता॥

(भ.र.सि.१/२/२)

श्रवण–कीर्त्तनादि रूपसे जड़ इन्द्रियोंकी चेष्टा द्वारा जो भक्ति साधनीयके रूपमें प्रतिभात होती है, उसे 'साधन भक्ति' कहते हैं। इस साधन द्वारा भाव भक्ति और प्रेम भक्ति साध्य होती है। उपरोक्त वाक्यये ऐसा नहीं समझना चाहिए कि इन्द्रियोंके द्वारा भक्ति उत्पन्न होती है, क्योंकि भक्ति शुद्ध आत्माका नित्यसिद्ध स्वभाव है। श्रवण–कीर्त्तनादि द्वारा चित्तमें उस सिद्धभावको उदय करानेमें सहायता करनेका नाम ही साधन है।

रतिकी परिभाषा—

शुद्धसत्त्वविशेषात्मा प्रेमसूर्यांशु साम्यभाक्।
रुचिभिश्चित्तमासृण्यकृदसौ भाव उच्यते॥

(भ.र.सि.१/३/१)

जो भक्ति शुद्धसत्त्व स्वरूप, प्रेमरूप सूर्यकी किरणके सादृश्ययुक्त तथा रुचि द्वारा चित्तको आद्रित (द्रवीभूत) करनेवाली है, उसे भाव भक्ति कहते हैं।

प्रेमकी परिभाषा—

अनन्यममता विष्णौ ममता प्रेमसङ्गता।
भक्तिरुच्यते भीष्मप्रह्लादोद्धवनारदैः॥

(भ.र.सि.१/४/२)

अन्य सभीके प्रति ममतावर्जित श्रीविष्णुके प्रति प्रेमयुक्त एकान्त ममताको भीष्म, प्रह्लाद, उद्धव और नारद आदि महाजन भक्ति या भाव (प्रेम) कहते हैं।

सर्वथा ध्वंसरहितं यद्यपि ध्वंसकारणे।
यद्भावबन्धनं युनो स प्रेमा परिकीर्तिताः॥

(श्रीमद्भा.१०/६०/५१की टीकामें)

प्रेमके ध्वंस होनेका कारण विद्यमान होनेपर भी जो प्रेम ध्वंस नहीं होता, ऐसे युगलके परस्पर प्रेम-बन्धनका नाम ही प्रेम है।

सम्यक् मसृणित स्वान्तो ममता अतिशयाङ्किता।
भाव स एव सान्द्रात्मा बुधै प्रेमा निगद्यते॥

(भ.र.सि.१/४/१)

भावके अत्यन्त गाढ़ होने पर पण्डितजन उसे प्रेम कहते हैं। यह अन्तःकरणको सम्यक् रूपसे द्रवीभूत करता है तथा प्रेमके पात्रमें अत्यधिक ममताको उत्पन्न करता है।

इसी प्रकार उन्होंने स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव, महाभाव, मादन आदिकी परिभाषाओंका भी उल्लेख किया है, जो अभी तक दूसरोंने नहीं किया है। दूसरे सम्प्रदायोंके विद्वान यहाँतक कि अद्वैतवादी-मायावादी भी उनके ग्रन्थोंसे उन परिभाषाओंको उदाहरणके रूपमें उल्लेख करते हैं।

आददानस्तृणं दन्तैरिदं याचे पुनः पुनः।
श्रीमद्रूपपदाम्भोजधूलिः स्यां जन्मजन्मनि॥

(दास गोस्वामी)

मैं दान्तोंमें तृण धारणकर दीनतापूर्वक यही पुनः पुनः प्रार्थना करता हूँ कि जन्म-जन्मान्तरोंमें श्रीमद्रूपगोस्वामीके चरणकमलोंकी धूल बन जाऊँ।

श्रील रूप गोस्वामीका संक्षिप्त इतिहास

(१४८९–१५६४ ई.)

श्रील रूप गोस्वामी और श्रील सनातन गोस्वामीके पूर्वज दक्षिण भारतके कर्णाटक देशमें वास करते थे। किसी कारणसे उनके पूर्वजोंमेंसे कोई एक उस प्रदेशको छोड़कर बङ्गाल प्रदेशमें आकर बस गये। श्रील रूप गोस्वामीका जन्म भारद्वाज–गोत्रीय यजुर्वेदीय ब्राह्मण कु
ई॰ में हुआ। इनके पिताका नाम श्रीकु
मुकु
बुद्धिमान, तीक्ष्ण मेधा तथा सर्वगुण–सम्पन्न देखकर गौड़ देशके बादशाह हुसैन शाहने इनको अपने प्रधानमन्त्री (श्रील सनातन गोस्वामी) और श्रील रूप गोस्वामीको उपमन्त्री (वित्तमन्त्री)के रूपमें नियुक्त किया। मुसलमान राजाकी सेवा करते हुए श्रील सनातन गोस्वामीका नाम साकर मल्लिक और श्रील रूप गोस्वामीका नाम दबीर खास हुआ। परन्तु तब भी इनमें श्रीमद्भागवतादि भक्ति–ग्रन्थोंके प्रति प्रबल अनुराग था और ये नित्य–प्रति उनका अनुशीलन करते थे। श्रीमन्महाप्रभु जब पहली बार रामकेलि ग्राममें उपस्थित हुए, तो ये दोनों भाई राजकीय वस्त्रोंको त्यागकर दीनहीन वेशमें उनके श्रीचरणोंके दर्शन करनेके लिये उपस्थित हुए। उनके दैन्यभावको देखकर महाप्रभुने कृपाकर उन्हें सनातन और रूप नाम दिया। महाप्रभुकी कृपासे इनका विषयोंके प्रति पूर्वसिद्ध वैराग्य और भी प्रबल हो गया और भगवान्में अनुरक्ति वर्द्धित होने लगी।

बादमें महाप्रभुने दोनों भाइयोंको वृन्दावन जानेकी आज्ञा दी। श्रील रूप गोस्वामीको महाप्रभुने दो विशेष कार्य— श्रीव्रजमण्डलके लुप्त तीर्थोंका उद्धार और भक्तिशास्त्रोंके प्रचारका उत्तरदायित्व सौंपा। श्रील रूप गोस्वामी सर्वप्रथम १५१५ ई॰में श्रीवृन्दावन पधारे। उन्होंने वहाँ रहते हुए वृन्दावनकी लुप्त लीला–स्थलियोंका प्रकाश किया और उसे गौड़ीय–वैष्णव धर्मका केन्द्र बनाया। श्रीगोविन्ददेवजीका प्राचीन विग्रह वृन्दावनमें एक मिट्टीके टीलेमें दबा हुआ था। श्रील रूप गोस्वामीने उन्हें वहाँसे निकाला और युवक राजपूत मानसिंहको श्रीगोविन्ददेवजीके लिये एक मन्दिर बनानेका

श्रील रूप गोस्वामी

निर्देश दिया। इतिहासकार मजूमदार गोस्वामियोंके कार्यपर टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि उनके कार्यकी महिमाको शब्दोंमें व्यक्त नहीं किया जा सकता है।

एक त्यागीकी भाँति रहते हुए श्रील रूप गोस्वामीने अनेक-अनेक ग्रन्थोंकी रचनाकर गौड़ीय वैष्णव दर्शनकी नींव स्थापित की। उनकी रचनाएँ उनके असाधारण काव्य सौन्दर्य और भक्तिपूर्ण विचारोंकी अद्वितीय प्रतिभाको प्रदर्शित करती हैं। उनके साहित्यको सभी सम्प्रदायके विद्वानोंने आदरपूर्वक अपने शोधका विषय बनाया है। श्रील रूप गोस्वामीने अपनी युवावस्थामें ही श्रीकृष्णलीला विषयक एक विनोदपूर्ण सुखान्त नाटक 'दानकेलि-कौमुदी' और दो वर्णनात्मक कविताएँ 'उद्धव-सन्देश और 'हंसदूत' की रचना की। अपनी परिपक्व अवस्थामें उन्होंने प्रचुर भक्ति-साहित्यकी रचना की। इनमें प्रमुख ग्रन्थ हैं—

(१) धर्म-शास्त्र— श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु, श्रीउज्ज्वलनीलमणि और लघुभागवतामृत।
(२) नाटक— विदग्ध-माधव और ललित-माधव।
(३) स्तव— स्तवमाला (अनेक स्तवोंका संग्रह)।
(४) काव्य-संग्रह— पद्यावली।
(५) राधा-कृष्ण-गणोद्देश-दीपिका।

श्रील रूप गोस्वामीका कार्य और शिक्षाएँ आज भी वृन्दावनमें जो आज ५,००० मन्दिरोंका नगर बन गया है, जीवित हैं। उनके साहित्यका एक सौसे अधिक भाषाओंमें अनुवाद किया गया है। वैष्णव धर्मपर आधारित 'श्रील रूप गोस्वामी सम्मेलन' प्रतिवर्ष उनकी तिरोभाव तिथिपर आयोजित किया जाता है। भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभुकी अन्तरङ्ग इच्छाको जगत्में स्थापित करनेके कारण, गौड़ीय वैष्णव उनके आनुगत्यमें भजन-साधन करते हैं।

सेवाभिलाषी
मंजरी देवी दासी

nitya-līlā-praviṣṭa oṁ viṣṇupāda

Śrī Śrīmad Bhaktivedānta Svāmī Mahārāja

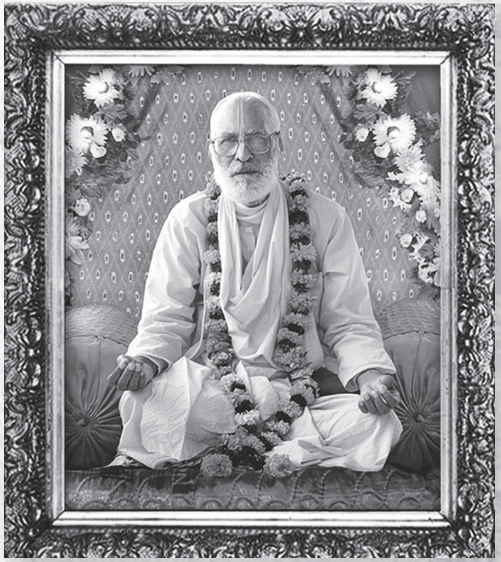

oṁ viṣṇupāda paramahaṁsa parivrājakācārya

Śrī Śrīmad Bhaktivedānta Nārāyaṇa Gosvāmī Mahārāja

Rūpānuga Ācāryas of the Modern Age

nitya-līlā-praviṣṭa oṁ viṣṇupāda
Śrī Śrīmad Bhaktisiddhānta Sarasvatī Prabhupāda

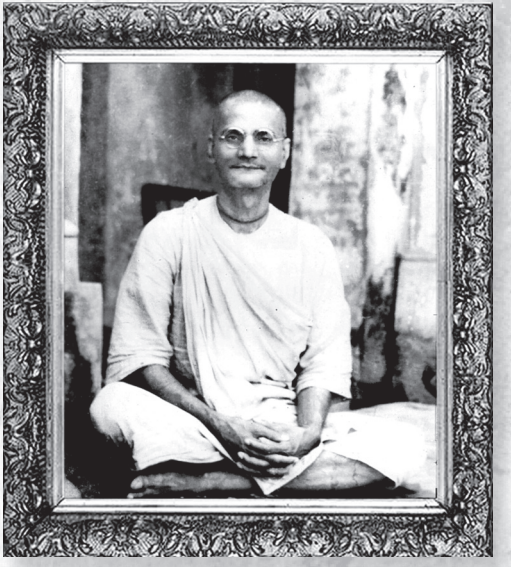

nitya-līlā-praviṣṭa oṁ viṣṇupāda
Śrī Śrīmad Bhakti Prajñāna Keśava Gosvāmī Mahārāja